संस्कार-अर्थ एवं प्रयोजन

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इस पाणिनीय सूत्र से भूषण अर्थ में 'सुट्' करने पर सिद्ध होता है। इसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता, व्याकरण सम्बन्धी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा, आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव क्रिया, छाप, स्मरणशक्ति, शुद्धि क्रिया,धार्मिक विधिविधान, अभिषेक, विचार, भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि अर्थों में हुआ है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कार शब्द के साथ विलक्षण अर्थों का योग हो गया है, जो इसके दीर्घ इतिहास-क्रम में इसके साथ संयुक्त हो गये हैं। इसका अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों में से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके। किन्तु हिन्दू संस्कारों में अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि-विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हैं, जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि और पूर्णता है। संस्कारों का उदय वैदिककाल या उससे पूर्व हो चुका था, जैसा कि वेदों के विशेष कर्मकाण्डीय मन्त्रों से विदित होता है।

वस्तुतः संस्कार शब्द का अर्थ ही है, दोषों का परिमार्जन करना। जीव के दोषों और कमियों को दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम औ मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थ के योग्य बनाना ही संस्कार करने का उद्देश्य है। जिस प्रकार किसी मलिन वस्तु को धो-पोंछकर शुद्ध-पवित्र बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्ण को आग में तपाकर उसके मलों को दूर किया जाता है और मल के जल जाने पर सुवर्ण विशुद्ध रूप में चमकने लगता है, ठीक उसी प्रकार से संस्कारों के द्वारा जीव के जन्म-जन्मान्तरों से संचित मलरूप निकृष्ट कर्म-

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

संस्कारों का भी दूरीकरण किया जाता है। यही कारण है कि हमारे सनातन धर्म में बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म लेनेतक और फिर बूढ़े होकर मरने तक संस्कार किए जाते हैं।

काशिकावृत्ति के अनुसार उत्कर्ष के आधान को संस्कार कहते हैं-'उत्कर्षाधानं संस्कारः।' संस्कारप्रकाश के अनुसार अतिशय गुण को संस्कार कहा जाता है-'अतिशयविशेषः संस्कारः।' मेदिनीकोश के अनुसार संस्कार शब्द का अर्थ है-प्रतियत्न, अनुभव अथवा मानसकर्म। न्यायशास्त्र के मतानुसार गुणविशेष का नाम संस्कार है। संस्कारदीपक में संस्कार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि आत्मा या शरीर के विहित क्रिया के द्वारा अतिशय आधान को संस्कार कहते हैं।

वस्तुतः मनुष्य की नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिए, इसके साथ ही बल-वीर्य, प्रज्ञा और दैवीय गुणों के प्रस्फुटन के लिए शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट संस्कारों से व्यक्ति को संस्कारित करने की आवश्यकता है। संस्कारित व्यक्ति मनुष्य प्रेय एवं श्रेय दोनों को प्राप्त करता है। संस्कारों का प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता है, अतः उत्तम संस्कारों से अन्तःकरण को उत्कृष्ट बनाना चाहिए। मानव-जीवन को शुद्ध करने की चरणबद्ध प्रक्रिया का नाम संस्कार है। लौकिक जीवन में मनुष्य आनन्द का संचय करते हुए च्युतिरहित चरमलक्ष्य की प्राप्ति संस्कारों से करता है।

संस्कारों का सूत्रपात यद्यपि वैदिक युग में ही हो चुका था, परन्तु लिखित विवरण के रूप में इनका विकसित निदर्शन धर्मशास्त्रों तथा स्मृतिग्रन्थों में उपलब्ध होता है। मानव-जीवन में कुल कितने संस्कार होने चाहिए, इस विषय में धर्मशास्त्रों में पर्याप्त मतभेद दिखायी पड़ता है। संस्कारों के सर्वप्रथम उल्लेखकर्ता प्राथमिक गृह्यसूत्रों में इनकी संख्या 11 बतायी गयी है। कुछ गृह्यसूत्र जैसे पारस्कर, बौधायन और वाराह, इनकी संख्या 13 मानते हैं। वैखानस धर्मसूत्र के अनुसार संस्कार 18 हैं। गौतम धर्मसूत्र में यह संख्या 40 हो गयी है। आचार्य मनु के अनुसार ये संस्कार 13 ही हैं, परन्तु वेदमर्मज्ञ स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'संस्कार विधि' में कुल 16 संस्कारों का उल्लेख किया है, जो अधिकांश धर्मशास्त्रों को स्वीकार्य है। ये सोलह संस्कार निम्नलिखित हैं- गर्भाधान संस्कार, पुँसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार, जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चूडाकर्म संस्कार, कर्णवेध

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

संस्कार, विद्यारम्भ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारम्भ संस्कार, केशान्त संस्कार, समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार, अन्त्येष्टि संस्कार।व्याससमृति में 16 संस्कारों के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, वपनक्रिया (या चूडाकरण), कर्णवेध, उपनयन (व्रतोदेश), वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाहाग्निपरिग्रह तथा त्रेताग्निसंग्रह।

अन्य गृह्यसूत्रों में इन संस्कारों के नाम कुछ भिन्न हैं, जैसे-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास एवं अन्त्येष्टि। इनमें प्रथम गर्भाधान, पुंसवन, तथा सीमन्तोन्नयन प्रसव के पूर्व के हैं, जो मुख्यतः माता-पिता द्वारा बीज एवं क्षेत्र की शुद्धि के लिए किए जाते हैं। अग्रिम छः जातकर्म से कर्णवेध तक बाल्यावस्था के हैं, जो परिवार-परिजन के सहयोग से सम्पन्न होते हैं। अग्रिम तीन उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन विद्याध्ययन से सम्बद्ध हैं, जो मुख्यतः आचार्य के निर्देशानुसार सम्पन्न होते हैं। विवाह, वानप्रस्थ एवं संन्यास-ये तीन आश्रमों के प्रवेशद्वार हैं तथा व्यक्ति स्वयं इनका निष्पादन करता है और अन्त्येष्टि जीवनयात्रा का अन्तिम संस्कार है, जिसे पुत्र-पौत्र आदि पारिवारिक जन तथा इष्ट-मित्रों के सहयोग से किया जाता है। इनमें प्रथम आठ संस्कार प्रवृत्तिमार्गीय और दूसरे आठ संस्कार निवृत्तिमार्गीय हैं।

संस्कारों का प्रयोजन

1) अशुभ प्रभावों का प्रतीकार- अवाञ्छित प्रभावों के निराकरण के लिए हिन्दुओं ने अपने संस्कारों के अन्तर्गत अनेक साधनों का अवलम्बन किया।
2) संस्कारों का भौतिक प्रयोजन- संस्कारों का भौतिक प्रयोजन है- धन, धान्य, पशु, सन्तान, दीर्घजीवन, सम्पत्ति, समृद्धि, शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। हिन्दुओं का यह विश्वास था कि आराधना और प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं और आकांक्षाओं को देवता जान लेते हैं और पशु, सन्तान, अन्न, स्वास्थ्य तथा सुन्दर शरीर और तीक्ष्ण बुद्धि के रूप उनकी पूर्ति करते हैं। इन

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

भौतिक प्रयोजनों की नींव अत्यन्त दृढ़ है और आज भी उन्होंने जनसाधारण के मन पर अधिकार कर रखा है।

3) स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति- संस्कारों का एक प्रमुख प्रयोजन स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति था। शंखस्मृति का कथन है कि संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्राह्मपद को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह फिर कभी च्युत नहीं होता।

4) व्यक्तित्व का निर्माण और विकास- हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक कृत्यों और संस्कारों से जिस सांस्कृतिक प्रयोजन का उद्भव हुआ, वह था व्यक्तित्व का निर्माण और विकास। संस्कार जीवन के प्रत्येक भाग को व्याप्त कर लेते हैं। संस्कारों को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि जीवन के आरम्भ से ही व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाता है। संस्कार मार्गदर्शन का कार्य करते थे, जो आयु के बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन को एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाते थे। फलतः एक हिन्दू के लिए अनुशासित जीवन व्यतीत करना आवश्यक था तथा उसकी शक्तियाँ सुनियोजित व सोद्देश्य धारा में प्रवहमान रहती थीं।संस्कारों को अनिवार्य बनाने में हिन्दू समाज-शास्त्रियों का उद्देश्य संस्कृत व चरित्र की दृष्टि से समाज का एकरूप विकास तथा उसे समान आदर्श से अनुप्राणित करना था।

5) आध्यात्मिक प्रयोजन-आध्यात्मिकता हिन्दुत्व की प्रमुख विशेषता और हिन्दू-धर्म का प्रत्येक युग उससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। हिन्दुओं के इस सामान्य दृष्टिकोण ने संस्कारों को भी अध्यात्म-साधना के रूप में परिणत कर दिया। संस्कारों के आध्यात्मिक महत्त्व की स्पष्ट व्याख्या करना या उसे लिपिबद्ध करना कठिन कार्य है। यह तो उनका अनुभव है, जो संस्कारों से संस्कृत हो चुके हैं। संस्कार जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्यमार्ग का काम देते थे। संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। उनके द्वारा संस्कृत व्यक्ति यह अनुभव करता था कि सम्पूर्ण दैहिक क्रियाएं आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्राणित हैं। यही वह

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था।

वस्तुतः संस्कार शब्द के अर्थ में ही उसका प्रयोजन भी निहित है। वस्तुतः संस्कारों का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष मात्र से न होकर सम्पूर्ण समाज से था। विविध संस्कारों की क्रियाएं शरीर को शुद्ध करती हैं तथा इहलोक और परलोक में भी मनुष्य को पाप से विमुक्त कराती हैं। विशिष्ट संस्कारों के किए जाने से व्यक्ति के जन्मगत दोष नष्ट हो जाते हैं। मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही संस्कारों का प्रयोजन है। जीवन के प्रगति मार्ग में ये संस्कार सुन्दर सोपान के सदृश हैं जो मनुष्य के मनोविचारों तथा प्रवृत्तियों को शुद्ध करते हुए उसे निरन्तर ऊँचा उठाते जाते हैं। बाल्यावस्था में इन संस्कारों का विशिष्ट प्रयोजन है। बालक के अपरिपक्व मस्तिष्क पर संस्कारों की विभिन्न क्रियाएं अपना दृढ़ एवं दूरगामी प्रभाव छोड़ती हैं। विभिन्न संस्कारों से शुद्ध हुआ शरीर ही ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो पाता है। भारतीय परम्परा में संस्कारों की योजना इतनी बुद्धिमतापूर्वक की गई थी कि वह सम्पूर्ण जीवन को आवृत्त करती थी, जीवन के एक भाग मात्र को नहीं।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi